श्रीभैरवोपदेश

अध्यात्म-योग

(सरल गुजराती भाषा एवं हिन्दी अनुवाद सहित)

गुप्तावतार बाबाश्री

'चण्डी' वर्ष ४६, विशिष्ट अङ्क—५

अध्यात्म-योग

क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ योग निरूपण

एवं

वैराग्य-योग

सहित

रचयिता
गुप्तावतार बाबा श्री

अनुवादक
'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल

सम्पादक एवं टिप्पणी-कर्त्ता
'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल
श्री ऋतशील शर्मा

प्रकाशक
कल्याण-मन्दिर प्रकाशन,
चण्डी कार्यालय, अलोपीबाग मार्ग,
इलाहाबाद—२११००६

द्वितीय संस्करण : : पौष-पूर्णिमा २०४४ वि०—३ जनवरी ८८

मूल्य : [redacted] रु०

सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक
चण्डी कार्यालय,
परावाणी प्रेस,
अलोपीबाग मार्ग, इलाहाबाद—२११००६

अ - नु - क्र - म

१	निवेदन	५
२	पुस्तक-परिचय	६
३	विषय-प्रवेश	७
४	ग्रन्थ-कर्त्ता का भाव-मय परिचय	१३
५	ईश्वर का अर्थ	१५
६	'योग' का अर्थ	१६
७	'अध्यात्म-योग' का अर्थ	१७
८	अध्यात्म-योग	१९
९	क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ और क्षेत्रपाल	३८
१०	वैराग्य अर्थात् विवेक-बुद्धि	४२
११	वैराग्य-योग	४३

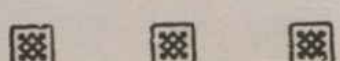

निवेदन

प्रथम संस्करण, वैशाख २००९—मई १९५२ का संक्षिप्त अंश

'श्रीभैरवोपदेश' पूज्य चरण श्रीमान् बाबा मोतीलाल जी महाराज की अध्यात्म-विषयक एक अनूठी रचना है। यह रचना गुजराती के सरस तथा ओज-पूर्ण पद्यों में है। इसमें कर्म, योग और ज्ञान आदि दार्शनिक तथ्यों का वर्णन हुआ है। यह वर्णन उपदेशात्मक होते हुये भी बहुत ही रोचक और हृदय-ग्राही है।

अभी तक यह रचना गुजराती में प्राप्त थी। अध्यात्म-विषय के प्रेमियों के सौभाग्य से अब यह हिन्दी-अक्षरों में हिन्दी-अनुवाद-सहित प्रकाशित हो रही है।

मुझ जैसे साधारण पाठकों की अल्प बुद्धि में योग, ज्ञान आदि गम्भीर विषय उतना समझ में नहीं आ पाते। ऐसों के लिये 'श्रीभैरवोपदेश' में इन सभी विषयों का विवेचन ऐसे ढँग से किया गया है कि साधारण-से-साधारण व्यक्ति भी उन्हें भले प्रकार हृदयङ्गम कर सकता है।

अध्यात्म-विषय के प्रेमियों को इस रचना का संग्रह कर इससे अपने कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने का प्रयत्न करना चाहिये।

देवीदत्त शुक्ल

वैशाख २००९, मई १९५२ प्रयाग

पुस्तक-परिचय

(मूल गुजराती संस्करण का संक्षिप्त अंश)

'श्रीभैरवोपदेश' में सबसे पहले 'निष्काम योग' का वर्णन किया गया है, जो उन्नति के सभी अभिलाषियों और कर्म-मार्ग के अधिकारियों के लिए आवश्यक है।

'निष्काम योग' की पूर्त्ति, 'कर्म-संन्यास योग' द्वारा ही हो सकती है। इसलिये उसका वर्णन 'निष्काम योग' के बाद किया गया है। (ये दोनों अब पुस्तक-रूप में अलग से प्रकाशित हैं)।

कर्म और अकर्म के बन्धनों से मुक्त जीव अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। इसलिये 'कर्म-संन्यास योग' के बाद 'अध्यात्म योग' का वर्णन किया गया है। 'क्षेत्र' और 'क्षेत्रज्ञ' के ज्ञान के बिना अध्यात्म-ज्ञान पूर्ण नहीं होता। इसलिए उसका भी वर्णन किया गया है।

वैराग्य के बिना 'क्षेत्र' का स्वरूप पूर्ण रूप से समझ में नहीं आता, इसलिए 'वैराग्य योग' का वर्णन भी किया गया है। (प्रस्तुत पुस्तक में 'अध्यात्म-योग', 'क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-योग निरूपण' और 'वैराग्य-योग' प्रकाशित है।)

इस प्रकार इस छोटे से ग्रन्थ में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की भाँति तीनों काण्डों और सोलह योगों का वर्णन कर ऐसी जगत्-हितकारी एक नई योजना उपस्थित की गई है, जिससे सरल दृष्टि, सरल बुद्धि और सरल स्वभाव के व्यक्तियों का भी उपकार हो सकता है।

—शङ्कराचार्य श्री स्वामी त्रिविक्रम तीर्थ जी

लींबड़ी, सं० १९९१, नवम्बर १९३४

विषय-प्रवेश

अध्यात्म ही समाधान है !

आधुनिक युग सुविधाओं का युग है। विज्ञान की सहायता से जीवन-यापन हेतु अनेक सुविधाओं की खोज हुई है और होती ही जा रही है। इन सुविधाओं से मानव-जीवन आज समृद्ध तथा सम्पन्न दिखायी पड़ रहा है।

मानव-जीवन जहाँ हमें सुविधा-सम्पन्न दिखायी देता है, वहीं हमें यह भी स्पष्ट दिखायी देता है कि उसकी समृद्धता बाह्य चिह्न मात्र है। अन्दर से सम्पूर्ण मानव-समाज आज अत्यन्त दरिद्र है। चारों ओर मनुष्यता का दिन-प्रतिदिन ह्रास हो रहा है। सुविधाओं के संग्रह के लिए, सुविधाओं के नशे में प्रत्येक क्षेत्र में आत्म-घाती संघर्ष की गूँज है।

ऐसे विकट समय में, इक्कीसवीं शताब्दी एक ओर जहाँ सुविधाओं की दृष्टि से लुभावनी प्रतीत हो रही है, वहीं पारस्परिक बन्धुत्व की कमी के कारण वह अत्यन्त भयावह दिख रही है। इस किंकर्त्तव्य-विमूढ़ स्थिति के कारण आज का मानव-समाज एक निर्णायक मोड़ पर खड़ा हो गया है। उसे अपने भविष्य के प्रति विशेष रूप से सोच-समझकर नीति-निर्धारण करना है तथा अपनी त्रुटियों के सम्बन्ध में प्रभाव-कारी आत्म-विश्लेषण करना है।

आधुनिक मानव-समाज के उपर्युक्त निर्णायक मोड़ के सम्बन्ध में महर्षि अरविन्द का स्पष्ट समाधान है—

"...इस समय हम एक बार फिर पृथ्वी के इतिहास के एक निर्णायक मोड़ पर खड़े हैं। बहुत से लोगों की ओर से यह प्रश्न पूछा जाता है कि—'क्या होने जा रहा है ?'

सर्वत्र बेचैनी, प्रतीक्षा और भय का भाव विद्यमान है। क्या होने वाला है ?

उत्तर बस एक ही है, यदि केवल मानव-जाति आध्यात्मिक हो जाना स्वीकार कर ले।..."

—श्री अरविन्द

महर्षि अरविन्द के उपर्युक्त उत्तर से आज का नेतृत्व-वर्ग भली भाँति परिचित है, इसमें कोई सन्देह नहीं। प्रत्येक देश का नेतृत्व आज समय-समय पर इसे स्पष्ट रूप में स्वीकार कर रहा है। उदाहरण के लिए अपने देश के प्रधान-मन्त्री के कल के भाषण को ही लीजिये। प्रधान-मन्त्री जी ने स्पष्टतया कहा है कि—

'यह देश पाँच हजार वर्षों से एक समृद्ध सभ्यतावाला देश रहा है और सदियों तक दुनिया के सब समाजों की निगाह हमारी ही तरफ लगी रही है। उन्हें हमसे ही जीवन के ऊँचे उद्देश्यों की शिक्षा मिलती रही है। मगर अब हम अपनी उस आध्यात्मिक श्रेष्ठता को खोते जा रहे हैं और जीवन की निम्न होड़ में पड़ गए हैं। अपने आपको इस गिरावट से निकाल हमें संतुलित दिशा की तरफ मोड़ना है।'

मद्रास, २३ दिसम्बर ८७ —राजीव गांधी

'अध्यात्म' क्या है ?

यह स्पष्ट हो जाने पर कि मानव-समाज के सुन्दर भविष्य के लिए 'अध्यात्म' ही एक-मात्र समाधान है, प्रश्न यह उठता

है कि 'अध्यात्म' क्या है ? इच्छा होते हुए भी हम 'आध्यात्मिक' क्यों नहीं बन पा रहे हैं ?

वास्तव में, आज सङ्कट के समय यह कहना आसान है कि 'आध्यात्मिक' बनो। मुख्य बात यह है कि हम आध्यात्मिक कैसे बनें ? अध्यात्म है क्या ? क्या हमारा आचरण आध्यात्मिक जीवन के योग्य है ? क्या हमारी इच्छायें, सङ्कल्प, धारणायें आध्यात्मिकता के अनुरूप हैं ? क्या हमारे मन की प्रवृत्तियाँ आध्यात्मिक जीवन के उपयुक्त हैं ?

सच बात यह है कि हम अपने-आपको नहीं जानते। क्या नेतृत्व-वर्ग, क्या जन-समाज, सभी अपनी-अपनी सुख-सुविधाओं के मोह में बँधे हैं। नई-नई सुविधाओं की खोज हमने अवश्य कर ली है, किन्तु हमारा जीवन क्षुद्रअहङ्कार, मन-बुद्धि से बँधा है। हमें केवल वस्तुओं की पहचान है। उनकी आकर्षण-शक्ति का वोध है। अपने से बाहर विश्व की एक-मात्र सुविधा-भोगी जानकारी है।

वस्तुओं के पीछे पात्रता प्रदान करनेवाली जो सूक्ष्म शक्ति विद्यमान है, वह हमें ज्ञात नहीं है। जिस सूक्ष्म शक्ति से हमें वस्तुओं का--वाह्य विश्व का वास्तविक उपयोग ज्ञात होता है, उससे हम प्रायः अनभिज्ञ हैं।

अस्तु, यदि हमें अध्यात्म की ओर बढ़ना है, अपने भविष्य को सुन्दर बनाना है, सम्पूर्ण मानव - समाज को विनाश से बचाना है, तो निश्चय ही पूर्ण सच्चाई के साथ सबसे पहले हमें निजी क्षुद्रता की ओर ध्यान देना होगा। आध्यात्मिक जीवन हेतु अपनी इच्छाओं, सङ्कल्पों, धारणाओं को शुद्ध करना होगा। अपने मन-बुद्धि-अहङ्कार को रूपान्तरित करना होगा।

प्रस्तुत पुस्तक इस सम्बन्ध में विशेष सहायक हो सकती है। परम पूज्य बाबाश्री ने इस पुस्तक द्वारा 'अध्यात्म' जैसे गम्भीर विषय को सरल-सुबोध रूप में प्रस्तुत किया है।

सबसे पहले इस पुस्तक में यह बताया गया है कि विश्व में केवल स्थूल पदार्थ ही नहीं है। स्थूल पदार्थों के पीछे सूक्ष्म सत्-शक्ति विद्यमान है। इस सूक्ष्म शक्ति का भान हमें अपनी इन्द्रियों द्वारा नहीं हो सकता। मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार की क्षुद्रता से ऊपर उठकर ही हम इस सूक्ष्म शक्ति का अनुभव कर सकते हैं। स्थूल और सूक्ष्म विश्व का सच्चा ज्ञान ही 'अध्यात्म' है।

मानव-देह अपने कर्म से जीती है, अपने कर्म से मरती है और अपने कर्म के खम्भे में आप ही बँध जाती है। अर्थात् मनुष्य को वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। वह चाहे, तो वास्तविक ज्ञान को प्राप्त कर सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त करे अथवा वास्तविक ज्ञान से अनभिज्ञ बन कर अपना सम्पूर्ण विनाश करे।

कर्म के मार्ग की पगडण्डी बहुत लम्बी है। उसमें इन्द्रियों के सुख की इच्छा करते-करते व्यक्ति गिर जाते हैं। प्रत्येक कर्म में विश्व के स्वामी की अभिव्यक्ति होती है। विश्व के स्वामी (विभु) का उत्पत्ति, स्थिति और लय—यह आध्यात्मिक स्वभाव है। अतएव इन्द्रियों के सुख से ऊपर उठ कर हमें दिव्य अभिव्यक्ति का पात्र बनना चाहिए।

दिव्य मोती-रूप प्रकाश

प्रत्येक प्राणी या मनुष्य चैतन्य-मय ('ह'कार - युक्त) होकर विश्व के स्वामी के स्वभाव को ही व्यक्त करता है। विश्व के स्वामी के आध्यात्मिक स्वभाव को न जानने से हमें इस तथ्य

का ज्ञान नहीं होता और हम अपने में कर्म की स्थापना करने लगते हैं। अपना यह कर्म अच्छा है—बुरा है, इस प्रकार के द्विविधा-जनक जाल में फँस कर अपनी शक्ति को नष्ट करते हैं।

कर्म की स्थापना अपने में न करते हुये, अपने को कर्त्ता न समझते हुये, यदि हमारा चिद् साक्षी-भाव से कर्म करे, तो वह सर्व आपत्तियों—क्षुद्रताओं को भेदते हुए श्रेष्ठ-तम रूप को प्राप्त कर लेता है।

साक्षी-भाव से विवेक अर्थात् सदसद्-विवेक-बुद्धि उत्पन्न होती है। ज्ञान, मोह, ममता, शम, दम, क्षमा, असत्, सत्, दुःख और समता के संघर्षण में सत्-असत् के विवेक की उपलब्धि होती है, जिससे अन्तर में विकास होता है और ज्योति-रूपी प्रकाश दिखाई देता है। इस प्रकाश से कर्म-मार्ग स्पष्ट हो जाता है और विकास की अनन्त सम्भावनायें प्रस्तुत हो जाती हैं, कहीं किसी प्रकार की बाधा नहीं होती।

अध्यात्म मार्ग से झरता हुआ पात्रत्व-प्रद जीवन

अध्यात्म-मार्ग से झरता हुआ जीवन पात्रत्व-प्रद है और पात्रता का विकास मानव-जीवन का वास्तविक—सार्थक उद्देश्य है। अध्यात्म-मार्ग का मूल-भूत सिद्धान्त है—पात्र बनो व बनते रहो। इस मार्ग के अतिरिक्त जीवन को व्यक्त करने का आनन्द-मय, चैतन्य-मय व सार्थक उपाय दूसरा कोई नहीं है।

विश्व न तो भोग-मय है, न कर्तव्य-मय। विश्व विकास-मय है। इस विकास को हम अपने पात्र में पकड़ पावें, इसके लिए हमें अपनी पात्रता के विकास को प्रमुख कर्त्तव्य मानना होगा।

गुरु या उपदेश-कर्त्ता अध्यात्म-मार्ग में पात्रता के विकास के सोपान हैं। हम अपना उच्च बीज बनाकर अपनी वर्त्तमान

कोटि से ऊपर उठ नहीं सकते। अतः अपनी कोटि के भेदन के लिए, अपनी पात्रता के विकास के लिए हमें अपने से उच्च बीज (गुरु या उपदेश-कर्त्ता) का आवाहन करना पड़ता है। इस प्रकार आवाहन किया गया उच्च बीज, ज्ञान-इच्छा-क्रिया की हमारी वर्त्तमान उत्तेजना में से, भिन्न प्रकार की प्रतिक्रिया जगाकर, हमें हमारी पराधीनता से—जड़ता से छुड़ा सकता है।

हमारा मन भटकने और भटकानेवाला है। गुरु-कृपा हमारे मन को विवेक-बुद्धि से युक्त करके एक बिन्दु में स्थिर करती है। तब विश्व के स्वामी की विश्व-व्यापिनी व पात्रता - मयी क्रिया का दिव्य-भाव प्रकट होता है।

हमें विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक से पाठक - बन्धुओं को उपदेश - कर्त्ता बाबाश्री की अनूठी कृपा प्राप्त होगी और 'अध्यात्म-योग'-विषयक विवेक-बुद्धि जाग्रत होगी।

—ऋतशील शर्मा

प्रयाग, पौष पूर्णिमा २०४४ वि०

ग्रन्थ-कर्त्ता का भाव-मय परिचय

आज न तो विश्व में वह—(१) स्पन्दन-विन्दु रहा, (२) न वह मूल जल, (३) न मोती, (४) न मुक्त, (५) न वह भरा जाता रङ्ग और (६) न मोती को व्यक्त करनेवाला कीट ही। रह गया क्या ? मात्र (खाली) सीप !

सीप की मालाएँ पड़ी हुई हैं—(१) उनके लिखे पत्र, (२) भैरवोपदेश, (३) भजन-संग्रह और (४) तन्त्र-शास्त्र, मन्त्र-यन्त्रादि साहित्य।

हम जैसे क्षुद्र जीवों के प्रति उस कीट की परम कृपा इसी रूप में रही कि वह सीप के दोनों पट खोल कर, अपने हृदयाश्रम में स्थान देकर हमें उज्ज्वल मोती के दर्शन कराता था।

उस मोती का रङ्ग श्वेत था अर्थात् गुरु-स्वरूप था। इस मोती में पर्व-पर्व पर नाना-विध रङ्ग बदलते थे, जिससे यह पता चलता था कि विश्वास्तित्व अकर्त्ता होते हुए भी, उसकी मर्जी क्षण-क्षण बदलती रहती है और उसी प्रकार प्रकृति को घुमाती-फिराती है।

मोती में रङ्ग भरनेवाला कौन ? मूल - जल। वह क्या ? प्रकृति की आवश्यकता। विश्व-प्रवाह जिस समय जैसा स्वरूप

धारण कर ले। जैसे हमको अपनी आवश्यकताओं का अनुभव होता है, उसी प्रकार विश्व के कार्य - कर्ताओं को विश्व की आवश्यकताओं का अनुभव होता है। इसी कारण भगवान् शिव ने इस मूल-जल-रूप विश्वावश्यकता को शिर पर चढ़ाया है।

विश्व-प्रवाह का भान हमें जिस विन्दु से प्रारम्भ होता हुआ दिखाई देता है, वह स्पन्द-विन्दु है। सत् (बींग), परिणमन (विकमिंग), कारण (कैजुलिटी), कारक (कैजुएशन) और क्रिया (पर्पज़)—पाँचों के मूल-रूप झरने के स्रोत-रूप में आगे बहकर पूज्य बाबा का अभिनव रूप बन गया।

('बाबाश्री चरितामृत' ग्रन्थ से संग्रहीत)

ईश्वर का अर्थ

ईश्वर क्या वस्तु है ? उप-निषद् कहता है कि—'इन्द्रियेभ्यो परा हि अर्थाः ।'

अर्थात् इन्द्रियों से मन के विषय सूक्ष्म हैं, विषयों से मन सूक्ष्म है, मन से बुद्धि, बुद्धि से आत्मा, आत्मा से अव्यक्त और अव्यक्त से पुरुष सूक्ष्म है । पुरुष के परे कोई वस्तु नहीं है और वही परा-काष्ठा तथा परा-गति है ।

इसमें अस्तित्व की तीन सीढ़ियाँ बताई गई हैं—१ जीव, २ अव्यक्त और ३ पुरुष । जीव का अर्थ है जो बाहर की तरफ देखे ।

अव्यक्त वह है, जिसका बाहर का देखना बन्द हो गया हो। और पुरुष ईश्वर है ।

कपिल मुनि ने जीव और ईश्वर का भेद बताया है । इसी को 'सांख्य तत्त्व-विज्ञान' कहते हैं । कपिल मुनि के मतानुसार ईश्वर व्यक्ति-वाचक नहीं है, अपितु गुण-वाचक है। प्रत्येक मनुष्य ईश्वर हो सकता है। जीव जितना स्थूल वस्तुओं के आवरण में रहता है, उतना ही वह स्थूल रहता है ।

जैसे-जैसे हम अपनी बुराइयों को हटाते जायँगे और ईश्वर में जो गुण हैं, उनको ग्रहण करते जायँगे—अर्थात् धैर्य रखना, समत्व रखना, सबका भला चाहना, बुरे काम न करना, षड्-रिपुओं का सामना करना इत्यादि—वैसे-वैसे मन का आवरण हटता जायगा और उतना ही मन सूक्ष्म होता जायगा । इस तरह हम लोग धीरे-धीरे ईश्वरत्व प्राप्त करते जायँगे । यदि ईश्वर के सब गुण हममें आ जायँ, तो हम भी ईश्वर बन जायँगे ।

योग का अर्थ

योग 'तत्त्व-विज्ञान' है। पतंजलि ऋषि ने योग बताया है। गुरु श्री मत्स्येन्द्रनाथ नाम के एक योगी ने योग के विषय में बहुत कुछ कहा है। योग एक बड़ा विषय है। योग के तत्त्व-विज्ञान के प्रचलित होने के बाद जितने आचार्य हुये, उन्होंने योग के विषय में कुछ-न-कुछ कहा है। नानक' तुलसीदास, सूरदास और दूसरे महात्माओं ने भी व्यक्ति की उन्नति के लिए योग को ही प्रधान माना है। भगवान् श्रीकृष्ण ने सम्पूर्ण तत्त्व-विज्ञान का वर्णन योग में ही बताया है।

योग का अर्थ है मिलना। हम लोग कहते हैं—इसका इसके साथ संयोग अच्छा है या बुरा है। दूध और शक्कर का योग सुयोग कहलाता है।

मन को अपने अस्तित्व अर्थात् सत्य वस्तु की शोध में लगाना या विश्व को जानने का प्रयत्न करना—इन सबका योग में समावेश होता है। मन को एक विन्दु से दूसरे बिन्दु पर ले जाना अर्थात् सांसारिक लक्ष्य में एक बिन्दु पर लगे हुए मन को, उच्च लक्ष्य धारण करने के लिए ले जाने का नाम योग है।

'अध्यात्म-योग'

का

अर्थ

'अध्यात्म - योग' का अर्थ 'ईश्वर' का भजन करना है। 'ईश्वर' का चिन्तन करना है। दूसरे शब्दों में 'ईश्वर' में मन को लगाना है। मन को ऐसा बनाना है, जिससे वह 'ईश्वर'-मय बन जाय।

प्रत्येक मानवीय शरीर में जो मानने की शक्ति है, वही 'मन' है। 'मन' पर यदि अपने से बाहर की वस्तुओं का दबाव पड़ेगा, तो वह अस्थिर हो जायेगा और उसे वास्तविक आनन्द की प्राप्ति नहीं होगी।

मन को जिस वस्तु में लगाओगे, उसी में वह लग जायेगा। मन यदि 'ईश्वर' की याद में तन्मय हो जाय, तो वह 'ईश्वर' के काश से भर जायेगा और सत्यासत्य का ज्ञान होकर उसका आनन्द में लय हो जायेगा।

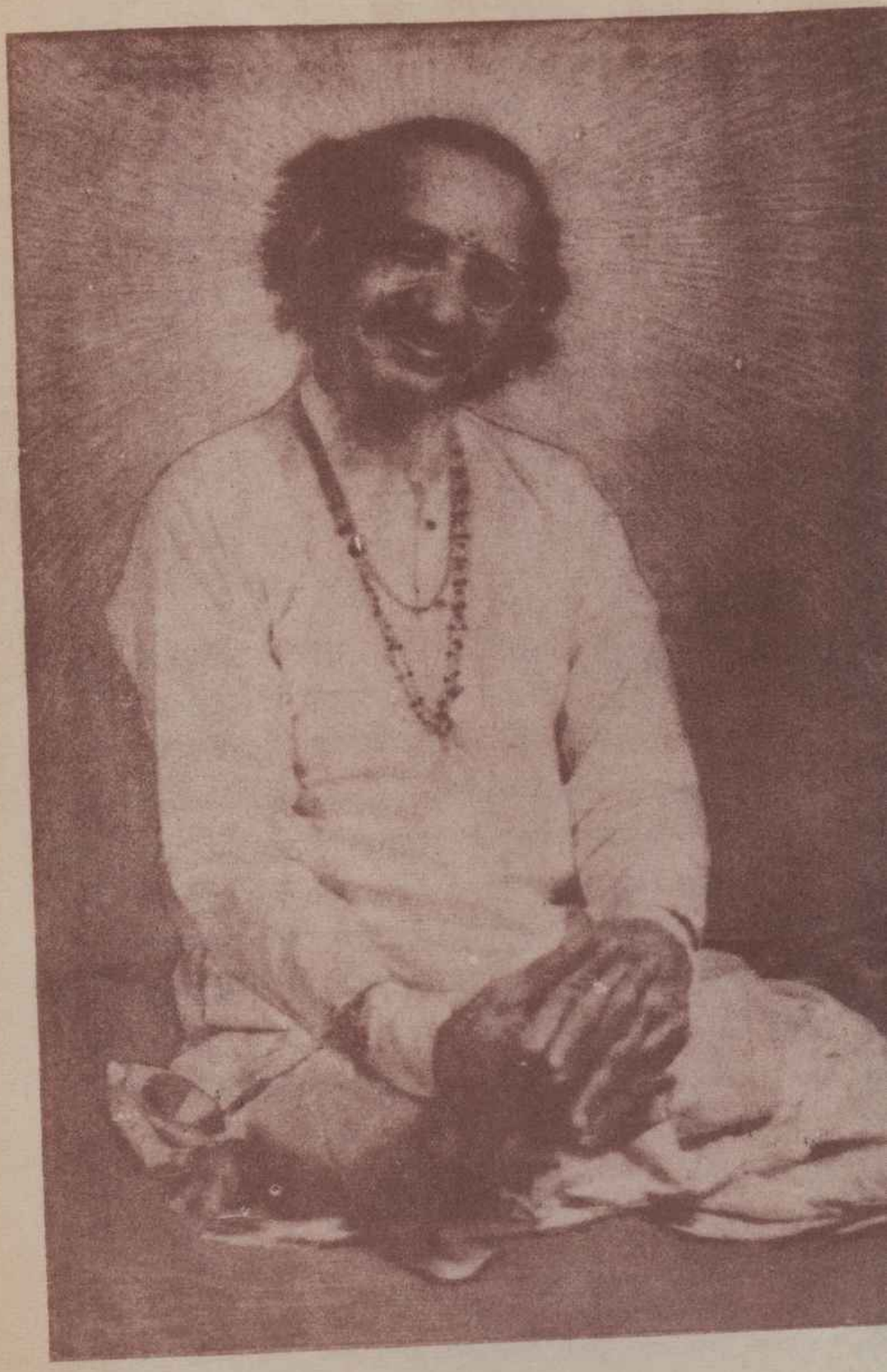

अध्यात्म-योग

अस्तित्व मां असत छे,
जो क्यांय सत्य पण छे,
ते सत्य आ जमा मां,
तो भास चार जण छे । १

दुनियाँ के व्यक्तियों में जब से कुछ समझ-शक्ति आई है, तब से सत्-असत् का झगड़ा चलता रहा है। वेदान्त ने चिदात्मा को सत्य बता कर माया को 'असत् है, भ्रम है, झूठ है' कह दिया। दूसरी तरफ़ एक उपनिषद्-कार ने कहा है कि—

'असतमिदमग्र आसीत्, तस्मात् सत् अजायत ।'

अर्थात् असत् में से सत् जागता है क्योंकि प्रकृति की दो गतियाँ हैं—१ अविद्या और २ विद्या। जो कुछ स्थूल वस्तु दीखती है, वह अविद्या है। यदि अकेले तत्वीकरण के भाव में से ही जगत् की उत्पत्ति मान लें

और साथ मे सत् न हो, तो स्थूल पदार्थ का रूपान्तर नहीं हो सकता। इसलिये उपदेशक कहते हैं कि विश्व असत् भले ही दीखे पर उसमें सत् जरूर है। इस सत्य का भान चार पदार्थों—१ मन, २ बुद्धि, ३ चित्त और ४ अहङ्कार द्वारा होता है। मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार की चैतन्य-समष्टि को जीव कहते हैं और इस जीव को 'ईश्वर है'—ऐसा भान होता है। ईश्वर है—उसका कारण व्यक्तित्व—जीव है। यदि जगत् में व्यक्ति का अस्तित्व न होता, तो ईश्वर के महत्व को महत्ता न मिलती क्योंकि किसी ने कहा है—

अधम न होते जगत में, किन्हें तारते राम ?
अधमन ने तुमको दिया, अधम उधारण नाम ॥

श्री ब्रह्म तत्-स्वभावो,
अध्यात्म नाम जेनूँ,

अधि-भूत भूत दावो,
अधि-यज्ञ विश्व जेनूँ। २

ब्रह्म की तीन क्रियाएँ हैं–१ उत्पत्ति, २ स्थिति और ३ लय। ब्रह्म का यह स्वभाव आध्यात्मिक है। जीवन-मण्डल अर्थात् जीव अधि-भूत कहे जाते हैं और जिससे यह विश्व बना है अर्थात् जिसका यह विश्व है, वह अधि-यज्ञ कहा जाता है।

अध्यात्म शक्ति विद्या,
अधि-भूत जीव भोगे,
अधि-दैव अन्तरो जे,
चिद् आत्मा न भोगे। ३

विद्या शक्ति, जिससे विश्व का ज्ञान होता है, अध्यात्म है। जीव सुख और दुःख भोगता है, यह अधि-भूत है और जो शक्ति चित्, चैतन्य या आत्मा है तथा भोग से परे है, वह अधि-दैव है।

अधि-यज्ञ विश्व-स्वामी,
वेदो कहे पुरुष जे,
जे ओत-प्रोत विश्वे,
छे सांख्यनो पुरुष जे। ४

अधि-यज्ञ अर्थात् विश्व-स्वामी को वेद 'पुरुष' कहता है। वह व्यापक रूप से विश्व में ओत-प्रोत है। सांख्य शास्त्र ने भी 'पुरुष' कहकर उसका वर्णन किया है। वह असंख्य जीवों का अर्थात् प्रत्येक जीव का बड़ा पुरुष है।

जे जीवने जमाडे,
ने उच्च मां रमाडे,
ते कर्मनी कमाणी,
कोरे खसी खमाडे। ५

वह चित् चैतन्य पुरुष जीवों का पोषण करता है, उनकी उन्नति करता है और स्वयं अलग रहकर उनकी कमाई का उनसे उपभोग कराता है।

आ काय कर्मथी जीवी,
कर्ममां हणाय,
जो जीव थांभलामां,
निज कर्मना चणाय। ५

यह काया अपने कर्म से जीती है, अपने ही कर्म से मरती है और अपने कर्म के खम्भे में आप ही बँध जाती है।

जे कर्म ते करे छे,
तेथी चडे पडे छे,
जो कर्म थाय सारां,
तो स्वर्गमां अडे छे। ७

जीव जैसा कर्म करता है, उसी के अनुसार वह ऊपर या नीचे जाता है। अच्छा कर्म करने से व्यक्ति स्वर्ग में जाता है।

पण पंथ पाळ लांबी,
जाता घणां पडे छे,
जो कर्म - बीज बाळे,
तो दोडतो चढे छे। ८

जीवन के मार्ग की पगडण्डी बहुत लम्बी है। उसमें सुख की इच्छा करते-करते प्रभु के चरणों में जानेवाले व्यक्ति गिर जाते हैं। परन्तु कर्म के बीज को

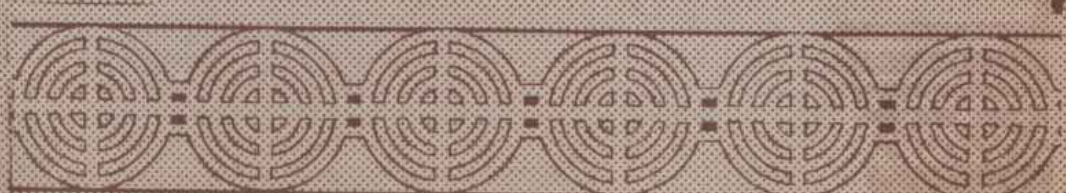

जलाकर अर्थात् द्वित्व को समान जानकर समत्व रखे, तो कर्म-बीज जल जाता है और जीव बहुत जल्दी उन्नत होता है और उसे प्रभु का साक्षात्कार त्वरित होता है।

जे भाव अन्त धारी,
पडशे स्व-देह तारी,
तूं तेज - भावना मां,
नव देह अन्य धारी । ९

जीव जीवित रहने तक कर्म करता है और उन कर्मों के भावों को अपने में अन्त तक भरता है। जिस अन्तिम भावना के साथ उसकी देह गिरती है, उसी भावना को लेकर वह नई देह फिर धारण करता है।

श्री ब्रह्मना स्वभावे,
ॐकार नाम भावे,
ते विश्वना विभूनी,
त्रणे क्रिया बतावे । १०

ॐकार प्रभु का नाम है क्योंकि वह प्रभु के स्वभाव को दिखानेवाला है। 'ॐ'कार में विद्यमान उत्पत्ति, स्थिति और लय—ये तीनों क्रियायें विश्व के विभु की क्रियायें हैं।

ह्रींकार बीज माया,
गति चक्रनी जतावे,
जो चित्तमां रमे तो,
माया नहीं सतावे। ११

'ह्रीं'कार माया-बीज है। 'ह्रीं'कार ह्+र्+ई +म् का बना हुआ है। जैसे प्रत्येक व्यंजन के द्वित्व में हकार है, वैसे ही विश्व के द्वित्व में हकार ईश-भाव में व्याप्त है। प्रकृति के प्रवाह में विद्यमान चिद्-भाव हकार के नाम से जाना जाता है। ह्रींकार चैतन्यात्मक बीज है। वह चैतन्य-मय द्वैत अग्नि, शक्ति और गति मिलकर बनता है अर्थात् उसकी उत्पत्ति अण्वात्मक चित् की उष्णता और शक्ति के गति-युक्त बनने से होती है। चिद्-गति के संघर्षण में सारा विश्व चलता है। उसकी क्रिया के भावों का अर्थात् १ अणु, २ चिद्,

३ गति और ४ संघर्षण–इन चार वस्तुओं के भावों का यदि चिद् साक्षी बन जाय, तो उसको माया सताती नहीं है।

षट्-चक्र मां फरी ते,
शिर चक्र मां सिधावे,
दल बीज वे पसारी,
निज सत्वमां सिधावे। १२

इस विश्व के षट्-चक्रों—१ भूः, २ भुवः, ३ स्वः, ४ महः, ५ जनः और ६ तपः—का भेदन करके जीव तप में=शिर-चक्र में स्थिर होकर सत्य में=त्रिपुटी-चक्र में जाता है। त्रिपुटी-चक्र की दाहनी ओर 'क्षं' याने शक्ति का भाव है और बाँई ओर 'हं'=शिव का भाव है। इन दोनों भावों में लय होकर जीव श्रेयत्व को पाता है।

लय थाय शुक्ल ते छे,
जे ईश विश्वनो ते,
श्रीकृष्ण नाम धारी,
रमतो स्व-विश्व मां ते। १३

अस्तित्व के दो पक्ष कहे जाते हैं—१ शुक्ल और २ कृष्ण। गौर वर्ण के भगवान् शिव, जो विश्वेश्वर अर्थात् विश्व के ईश्वर हैं, वह शुक्ल पक्ष है और काले रङ्ग के भगवान् कृष्ण, जो विश्वात्मा अर्थात् विश्व की आत्मा, विश्व में व्यापक हैं, वह कृष्ण पक्ष है।

आ जो पुरुष प्रभूने,
अव्यक्त व्यक्त-माया,
क्यां जीव जो जणाये,
जे देख तेज माया। १४

इस विश्व के स्वामी पुरुष प्रभु को तू देख। इस विश्व में जो अव्यक्त है, वह प्रभु है और जो व्यक्त है, वह माया है। जो नहीं दीखता, वह प्रभु है और जो दीखता है, वह माया है। ऐसे इस विश्व में अव्यक्त और व्यक्त दो ही हैं, फिर जीव कहाँ? इस प्रकार स्वयं प्रश्न कर उपदेशक आप ही बताते हैं कि जीव तो बेचारा अव्यक्त और माया दोनों के पाटों के बीच में गेहूँ की तरह पिस जाता है।

ते विश्व मां समायो,
तेमा न विश्व देखूँ,
आ योग योग-स्वामी,
तूँ क्यां जहाँ न देखूँ । १५

यह अव्यक्त प्रभु सारे विश्व में सम-रूप से भरा हुआ है पर विश्व उसमें नहीं है। वह विश्व में समाया है, तो भी उसको विश्व के विकार हानि-कर नहीं हो सकते। इस योग का, हे योग के स्वामी, तेरे सिवा कोई अनुभव नहीं कर सकता। ऐसी कौन वस्तु है, कौन सा स्थान है, जहाँ तुझको विश्व के नियन्ता-रूप से न देखूं ? क्योंकि जहाँ-तहाँ तू ही तू भरा हुआ है।

यां ऊँच नीच क्यां छे,
हूँ तो समत्व देखूँ,
जे ऊँच नीच भासे,
भ्रम बुद्धिनोज देखूँ । १६

अब प्रभु जब सबमें सम-रूप से भरा है, तब फिर ऊँच और नीच का भेद कहाँ से आया ? सब जीव

प्रवाह में बहते हैं और सबको मैं सम-रूप से देखता हूँ। ऐसा होने पर भी यदि ऊँच-नीच दीखे, तो यह केवल बुद्धि का भ्रम है, इसके सिवा कुछ नहीं।

ना देव तत्व जाणे,
ना देव देवना जे,
जे जाणतो प्रभू ते,
छे एक विश्व मां जे। १७

हे प्रभु, तेरे व्यापकत्व को अर्थात् समत्व-रूपी तत्वों को देव का देव भी नहीं जान सकता। उस परम लक्ष्य को यदि कोई जान सकता है, तो हे प्रभु, वह एक तू ही है।

बुद्धी जणाय जेथी,
ते ज्ञान, मोह, ममता,
शम, दम, क्षमा, असत ने,
सुख, दुःख, सत्य, समता। १८

ज्ञान, मोह, ममता, शम, दम, क्षमा, असत्, सत्, सुख, दुःख और समता के साथ के संघर्षण में ही सत्—असत् का विवेक अर्थात् सदसद्-विवेक बुद्धि उत्पन्न होती है ।

उत्पत्ति, नाश, भय, तप,
सन्तोष यश अहिंसा,
आ दान, शक्ति, अभया,
अप-शोक जीव हिंसा । १९

उत्पत्ति, नाश, भय, तप, सन्तोष, यश, अहिंसा, दान, शक्ति, अभया, अप-शोक, जीव-हिंसा—

छे भाव दोष गुण ते,
माया तणा विकारो,
जागे जणी जणावे,
विद्या घणा विकारो । २०

ये सब गुण-दोष माया के विकार कहे जाते हैं । इनमें जो गुण हैं, वे विद्या-जनित विकार हैं और जो अवगुण हैं, वे सब अविद्या-जनित विकार हैं । माया में विद्या और अविद्या दोनों का समावेश होता है ।

जे बुद्धि योग फावो,
अन्तर जई विकासे,
तम मोह अन्धकारे,
ते जोत थइ प्रकाशे । २१

जो बुद्धि योग में युक्त होकर अन्तर में विकास करती है, वह विश्व के तम-रूपी मोह के अन्धकार में ज्योति-रूप प्रकाश देती है ।

जे मा स्थूल-सूक्ष्म मां,
ज्यां-त्यां रही प्रकाशी,
तेने कहे अविद्या,
विद्या विभूति काशी । २२

जो जगज्जननी जहाँ-तहाँ स्थूल-सूक्ष्म में प्रकाश कर रही है, वह अविद्या है और जो विभूति देनेवाली है, वह विद्या है ।

अव्यक्त व्यक्त भावे,
गुरु रूपमां पधारी,
उपदेश देश कीने,
आपे अधार धारी । २३

अब पात्रत्व का भाव बताते हुये उपदेशक कहते हैं कि जब साधक पात्र बनता है, तब ईश्वर-लक्ष्य का कोई उच्च व्यक्ति गुरु-लक्ष्य से व्यक्त भाव में अर्थात् देह धारण करके साधक को उपदेश करता है। इससे साधक को आधार मिलता है और वह उच्च मार्ग में प्रविष्ट होता है।

ते शब्द मन्त्र दीपे,
दिसे प्रकाश पंथे,
पंथी मुंझाय ना जो,
कर झालीयो स्व-कंथे। २४

ऐसा गुरु शब्द-मन्त्र से साधक को प्रेरित करता है। उससे साधक का चित्त चैतन्य होता है। उसको मार्ग में प्रकाश दीखता है और गुरु ने उसका हाथ पकड़ा है, अतः पंथी—साधक घबराहट से डरता नहीं है।

हूँ ब्रह्म बोलि लटके,
गुरु हाथ झालियो ना,
तो कष्ट थाय झाझूं,
कर काल मालियो ना। २५

पर, दुनियाँ में तो वेदान्त आदि पुस्तकों का आश्रय लेकर 'मैं ब्रह्म हूँ' अर्थात् 'अहं ब्रह्मास्मि' कहनेवाला व्यक्ति अधर ही में लटकता है। अगर सद्-गुरु उसका हाथ न पकड़े, तो वह काल-रूप माली के हाथ में पड़कर बहुत कष्ट भोगता है क्योंकि—

दीवो देखाय त्यांना,
माया झंझोर बाझे,
अन्धार धार पावक,
देखे न पाय दाझे। २६

उसका हाथ काल के हाथ में होने से उसको प्रकाश नहीं दीखता और जोरों से चलते हुये माया-रूपी पवन में वह फँस जाता है। अँधेरे में कुछ नहीं दीखता, इससे उसके पैर मार्ग में पड़ी हुई अग्नि में पड़कर जल जाते हैं।

जो खाड़ होय माया,
धक्को दई किनारे,
पड पेस अन्ध दरमां,
त्यां पक्ष कोण तारे। २७

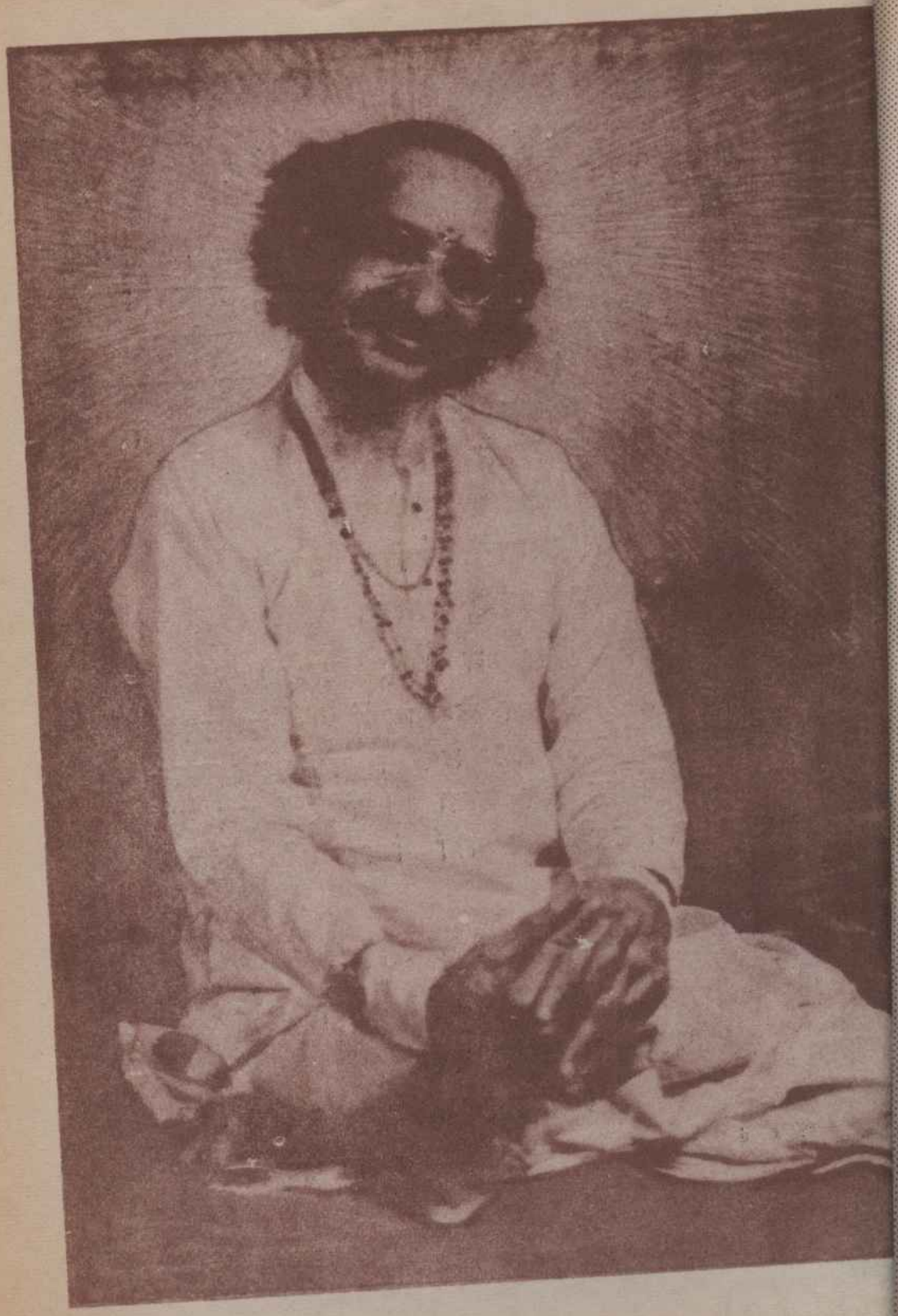

मार्ग में षड्-रिपु-रूपी पत्थर, काँटे, खड्ड, खचड़े आदि अनेक विघ्न हैं। मार्ग-दर्शक गुरु के न होने से व्यक्ति को विषय-भोग की लालसा में पड़ते देखकर माया उसे धक्का देकर खड्ड में गिरा देती है और आप अलग हो जाती है। फिर उस अन्धकार में व्यक्ति को बचानेवाला कोई नहीं रहता।

माटे रहो गुरूना,
चरणो धरी अधारे,
जो मोह मारशे तो,
गुरूनी दया उधारे।२८

इसलिये साधक को गुरु के चरण पकड़कर उसके आधार पर रहना चाहिये। तब यदि उसको विश्व का मोह सतायेगा या फँसायेगा, तो गुरु की कृपा उसको उससे बचा लेगी।

अभ्यास श्रेष्ठ छे पण,
ना ध्यानथी वधारे,
तेथी वधू थई जो,
ज्ञानी समस्त धारे।२९

अब उपदेशक कहते हैं कि अभ्यास करना श्रेष्ठ है, पर गुरु-चरण की ज्योति में ध्यान रखना और भी श्रेष्ठ है। उससे साधक को विश्व के अस्तित्व का ज्ञान होता है।

जग कर्म-योग सारो,
ज्ञानो थकी वधे तो,
कारण क्रिया बिनाना,
जीवे न ते वधे तो ।३०

कर्म-योग ज्ञान-योग से उत्तम है क्योंकि उसमें निष्काम कर्म करने से कर्म जल जाते हैं, अर्थात् कर्म लगते या बढ़ते नहीं हैं। इसलिये उस कर्म को भोगना भी नहीं पड़ता।

मारूँ ममत्व माया,
हूँ द्वेष वैर त्यागी,
कर काम विश्व हितनां,
गुरू शब्द ध्यान जागी ।।३१

साधक को गुरु के कहे हुये मन्त्र का ध्यान करते रहना चाहिये और गुरु-उपदेश में जाग्रत रहकर विश्व-हित के कार्य करने चाहिये।

ना, था प्रसन्न स्तवने,
निन्दा सूणी बळोमां,
स्थिर चित्त राख देखी,
दुःख धार उछळो मां ।३२

कोई तुम्हारी प्रशंसा करे, तो उसको सुन कर प्रसन्न न होना और निन्दा करे, तो उससे जलना नहीं चाहिये। चित्त को स्थिर रखकर जो दुःख पड़े, उससे घबराना नहीं चाहिये।

एवे रहो जडे तो,
रम-माण रम्य पोतो,
ते पर चढी तरीने,
जो भव्य दिव्य मोती ।३३

इस रीति से गुरु-उपदेशानुसार यदि साधक चलेगा, तो उसको गुरु-कृपा रूपी एक सुन्दर नाव मिलेगी, जिसमें बैठकर वह पार होगा और उसे दिव्य मोती-रूप प्रकाश दीखेगा।

शरीर क्षेत्र है !
जीव क्षेत्रज्ञ है ! !
प्रभु क्षेत्र-पाल है ! ! !

मानव - जीवन के उच्चतम विकास के लिए 'अध्यात्म-योग' के उक्त तीन प्रमुख सूत्र हैं। इन तीन सूत्रों को जो सदैव याद रखता है, वह उन्नत होता रहता है। स्व-पात्रता के विकास हेतु ये तीन मुख्य सिद्धान्त हैं।

'अध्यात्म-योग' के इन तीन सूत्रों को न जानने के कारण हमें अधः दृष्टि की प्राप्ति होती है। हम प्रतिदिन चित्त—बीज को अपने से पृथक् मानकर उसे बोकर उगाते हैं और उत्पन्न शक्ति—फल का अपने आराम के लिए उपयोग करते हैं। इस प्रकार सदैव अपने जीवन को हम लोग मथते रहते हैं। इससे अपनी पात्रता ज्यों की त्यों रहती है, उसका विकास नहीं होता और अन्त में दुःख की प्राप्ति होती है।

अतः अपने अस्तित्व के समग्र विकास के लिए 'अध्यात्म-योग' के उपर्युक्त तीन सूत्रों का सतत स्मरण आवश्यक है। आगे बाबाश्री के उपदेश पढ़िये।

क्षेत्र क्षेत्रज्ञ–निरूपण योग

आ क्षेत्र छे तमारूं,
वावो तमो लणो ते,
क्षेत्रज्ञ आप ह्वाला,
आ क्षेत्रने जणो ते । १

गीता में १ क्षेत्र और २ क्षेत्रज्ञ—ऐसे दो भाव कहे हैं। यहाँ उपदेशक ने १ क्षेत्र, २ क्षेत्रज्ञ और ३ क्षेत्र-पाल—ऐसे तीन भाव बताये हैं। उपदेशक कहते हैं—यह शरीर, जिसमें कारण शरीर अर्थात् मनो-मय कोश का समावेश होता है, एक क्षेत्र है। उसमें जैसा बीज पड़ेगा, वैसा उत्पन्न होगा। अच्छा बीज होगा, तो अच्छा उत्पन्न होगा और बुरा बीज होने से, बुरा फल होगा। जीव क्षेत्रज्ञ है। वही अच्छे और बुरे बीज को बोनेवाला है।

क्षेत्रज्ञ जो तरे पण,
नाणां जमीनदारो,
कर दाण ना चुकावे,
तो पाक जप्त सारो ।। २

खेत में खेती करने से जो कुछ पैदा हो, उसका कर यदि जमींदार को न चुकाया जाय, तो वह सारी फसल जप्त कर लेता है अर्थात् जीव जो कुछ कर्म करता है, वह निष्काम न हो या प्रभु के चरणों में कर्मों को न रखे अर्थात् अधि-यज्ञ न करे, तो उसकी कुछ भी कमाई जमा नहीं होती और वह किये हुये कर्मों का अच्छा और बुरा फल भोगता है।

प्रभु क्षेत्र-पाल पोते,
क्षेत्रज्ञ जीव धारी,
जे पाक थाय तेनां,
नाणां तणो वखारी। ३

जीव क्षेत्रज्ञ है और प्रभु क्षेत्र-पाल है। जीव जो कुछ पैदा या कमाई करता है, उसको जमा रखनेवाला प्रभु है। जो जीव अपनी उन्नति के मार्ग पर है, उसकी कमाई को वह उसे खर्च नहीं करने देता और अपने पास ही जमा रखता है। अति आवश्यकता होने पर वह साधक को जमा हुये व्याज में से थोड़ा व्याज खर्च करने को देता है।

जब साधक देव-वर्ग तक पहुँचता है, तब इसका भण्डारी प्रभु ब्याज सहित उसकी सारी कमाई उसके सामने रख देता है। यदि साधक उसको स्वीकार नहीं करता और प्रभु के चरणों में ही उसे रख देता है, तो प्रभु उसको आगे जाने का मार्ग बताता है। इस प्रकार उसकी उन्नति-रूपी कमाई चक्र-वर्ती ब्याज-सहित बढ़ती जाती है अर्थात् साधक आगे-ही-आगे उन्नत होता रहता है।

इच्छा ने दुःख सुखो,
संघात चेतना जे,
धृति द्वेष सर्व भेगां,
कहेवाय क्षेत्र आजे। ४

स्थूल देह=मनो-मय कोश तथा इच्छा, सुख-दुःख-संघात, चेतना, धारणा, द्वेष आदि जो विकार हैं, वे सब साथ मिलकर क्षेत्र कहलाते हैं।

वैराग्य

अर्थात्

विवेक-बुद्धि

'अध्यात्म-योग' की पहली शर्त है वैराग्य। वैराग्य का अर्थ 'विवेक-बुद्धि' है, न कि संसार का त्याग।

वैराग्य के जाग्रत होने पर विश्व के स्वामी की मर्जी—आध्यात्मिक स्वभाव मस्तिष्क से नीचे की ओर नाड़ी द्वारा उतरता है। सम्पूर्ण जीवन प्रभु की मर्जी का युक्त पात्र बनने लगता है और पात्रता का धीरे-धीरे विकास होकर उस मर्जी अर्थात् आध्यात्मिक स्वभाव के नए-नए रूप प्रकट होते हैं।

इस प्रकार अध्यात्म-मार्ग में वैराग्य से पात्रत्व-प्रद जीवन झरता है। पात्रत्व-प्रद जीवन सामान्य कामना-पूर्ति-प्रद जीवन से अधिक आनन्द-मय व चैतन्य होता है।

वैराग्य-योग

इन्द्रोना अर्थ भोगे,
ना चित्त वीत-रागी,
अभिमान त्याग जो तूँ,
तो थाय वीत-रागी । १

जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों के भोग के लिए काम करता है और जिसका चित्त भोगों से हट नहीं गया है, उसको वैराग्य जाग्रत नहीं हो सकता । यदि तुझे अपने मन में वैराग्य को जगाना है, तो अभिमान को त्याग दे ।

जन्मी मरे बुढ़ापो,
ने रोग दुःख मोह,
छे दोषथो जणाया,
कामादि सुख कोह । २

जन्म-मरण, बुढ़ापा, रोग, दुःख, मोह, काम, क्रोध, सुख—ये सब मन के दोष से उत्पन्न होते हैं ।

आ पुत्र दार म्हारां,
आ गेह देह मारूं,
हा ! शोकमां डुबावे,
थाये न अन्त तारूं । ३

लोग कहते हैं कि सन्तान, स्त्री, धन, दौलत सब मेरे हैं परन्तु ये सब अन्त में उनके नहीं होते । ये उन्हें केवल मोह और शोक में डुबानेवाले होते हैं और अन्त में इन्हें छोड़ने में दुःख होता है ।

ज्ञाता छे जीव तारो,
ने ज्ञान सत्य विद्या,
ज्ञेय विश्व वर छे,
द्वारा जणाय विद्या । ४

तुम्हारा जो जीव है, वह ज्ञाता है । सत्य विद्या ज्ञान है और विश्व ज्ञेय है, जिसके द्वारा विद्या जानी जाती है ।

दृष्टा अनेऽनुमन्ता,
भर्ता प्रभू तमे छो,

परमात्म रूप तारू,
सारे भर्या तमे छो । ५

हे प्रभु, तू द्रष्टा है, तू विश्व को माननेवाला है और विश्व का पालन करनेवाला है। तुम्हारा परमात्मा रूप है और तू सारे विश्व का सार है।

जग ओत प्रोत व्यापी,
करने अनन्त माथां,
छे विश्व-रूप तारूं,
वरणे न विश्व-गाथा । ६

हे प्रभु, तू जगत् में ओत-प्रोत है (सर्व-व्यापी है)। तेरे अनन्त हाथ और सिर हैं। यह सब विश्व तेरा ही स्वरूप है। इस विश्व-गाथा का वर्णन कोई नहीं कर सकता।

अविकारी रूप तारूं,
निर्गुण प्रकार तेना,
वसतो स्वभाव तारे,
भोगे गुणोज तेना । ७

हे प्रभु, यद्यपि यह जगत् विकारों से भरा हुआ है, पर तो भी तू अविकार-रूप है । तेरे स्वरूप का प्रकार निर्गुण है अर्थात् सत्, रज, तम से परे है । तू अपने स्वभाव में ही वास करता है, (और विश्व इनमें से होकर भी) और इन सब गुणों का ही भोग करता है ।

रज कर्म ने जणे छे,
सत सुख आपनारूं,
तम मोहने जगाड़ी,
नांखे अकल अन्धारूं ।८

रजो-गुण कर्म को उत्पन्न करता है, सत्व-गुण सुख को देनेवाला है और तमोगुण मोह उत्पन्न करके बुद्धि भ्रष्ट करता है अर्थात् मन सच्ची बात सोच नहीं सकता ।

आ दृश्य रूप तारूं,
तूं काशनो प्रकाश,
जो निर्गुणी अखाडे,
तारोज तूं प्रकाश । ९

इस विश्व में जो कुछ दृश्य दिखाई देता है, यदि उसका मूल देखने जायें, तो जो कुछ भी दिखाई देगा, वह तेरा ही स्वरूप है। तू विश्व के प्रकाश का भी प्रकाश है। इस निर्गुणी अखाड़े में तू ही तेरा प्रकाश है।

जोतो फरू फनामां,
गोती जना जनामां,
शूं ते मना हशे के,
"मोती" फना न मामां। १०

मैंने तुझे शून्य में ढूँढ़ा, प्रत्येक व्यक्ति में ढूँढ़ा, परन्तु तू कहीं नहीं दिखाई पड़ा। तो क्या तेरा मिलना मेरे लिए मना है, या मोती (प्रभु) शून्य और सृष्टि में नहीं है।

हा, पामती न कांई,
ज्यां जाउं त्यांज खोती,
भटकी न प्राण खोऊं,
जो हाथ होय "मोती"। ११

हाय! मैं बहुत-बहुत ढूँढ़ती फिरी, किसी जगह कुछ न मिला। जहाँ गई, वहाँ मैंने कुछ खोया ही।

यदि मोती मेरे पास होता, तो मुझे विश्वास है कि मुझे इस प्रकार भटक-भटक कर प्राण न खोने पड़ते।

बाहर बली हूं गोती,
अन्तर नजर न जोती,
दश दिक् करे टटोती,
कयां झलझलाय "मोती"। १२

मोती (आत्मा) का प्रकाश कहाँ झलझलाता है, यह देखने के लिए मैं अन्दर-बाहर और दशों दिशाओं में ढूँढ़ती फिरती रही।

पेठी जई जिगरमां,
श्री विश्व भारतीना,
धोती तले जणायूं,
"मोती" समी सतीना। १३

परन्तु जब विश्व-भारती के जिगर के अन्दर जा कर शोध किया, तब विद्या के आवरण के नीचे विवेक-बुद्धि दिखाई पड़ी।

मुमुक्षु मार्ग

(रहस्योद्घाटन)

गुप्तावतार बाबाश्री के प्रवचनों

के

आधार पर

ॐ, राम, कृष्ण, गायत्री, नवार्ण,

मृत्युञ्जय आदि मन्त्रों का रहस्यार्थ

एवम्

कुण्डलिनी-रहस्य, योग-रहस्य,

पादुका-रहस्य, पूजा-रहस्य

आदि

महत्वपूर्ण विषयों का विवेचन

मूल्य : १०-०० रु०